

अकलंक प्रतिष्ठा पाठ की जाँच

‘अकलंक प्रतिष्ठापाठ’ या ‘प्रतिष्ठाकल्प’ नाम का एक ग्रन्थ है, जिसे ‘अकलंक संहिता’ भी कहते हैं और जो जैन समाज में प्रचलित है। कहा जाता है कि “यह ग्रन्थ उन भट्टाकलंक देव का बनाया हुआ है जो ‘राजवार्तिक’ और ‘अष्टशती’ आदि ग्रन्थों के कर्ता हैं और जिनका समय विक्रम की ८वीं शताब्दी माना जाता है”। यद्यपि विद्वानों को इस कथन पर संदेह भी है, परन्तु तो भी उक्त कथन वास्तव में सत्य है या नहीं इसका अभी तक कोई निर्णय प्रकट नहीं हुआ। अतः यहाँ इसी विषय का निर्णय करने के लिए यह लेख लिखा जाता है—

यह तो स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में ग्रन्थ के बनने का कोई सन्-संवत् नहीं दिया है। परन्तु ग्रन्थ की संधियों में ग्रन्थकर्ता का नाम ‘भट्टाकलंक देव’ जरूर लिखा है। यथा—

इत्यार्षे श्रीमद्भट्टाकलंकदेवसंगृहीते प्रतिष्ठाकल्पनाम्नि ग्रन्थे सूत्रस्थाने प्रतिष्ठादिचतुष्टयनिरूपणीयो नाम प्रथमः परिच्छेदः॥१॥

संधियों को छोड़कर पद्यों में भी ग्रन्थकर्ता ने अपना नाम ‘भट्टाकलंक देव’ प्रकट किया है। जैसा कि आदि अंत के निम्न लिखित दो पद्यों से जाहिर है—

“प्रतिष्ठाकल्पनामासौ ग्रन्थः सारसमुच्चयः।

भट्टाकलंकदेवेन साधुसंगृह्यते स्फुटम्॥५॥ ”

“भट्टाकलंकदेवेन कृतो ग्रन्थो यथागमम्।

प्रतिष्ठाकल्पनामासौ स्थेयादाचंद्रतारकम्॥ ”

‘राजवार्तिक’ के कर्ता को छोड़कर, भट्टाकलंक देव नाम के कोई दूसरे विद्वान् आचार्य जैन समाज में प्रसिद्ध नहीं हैं। इसलिए मालूम होता है कि संधियों और पद्यों में ‘भट्टाकलंक देव’ का नाम लगा होने से ही यह ग्रन्थ राजवार्तिक के कर्ता का बनाया हुआ समझ लिया गया है। अन्यथा, ऐसा समझ लेने और कथन करने की कोई दूसरी वजह नहीं है। भट्टाकलंकदेव के बाद होने वाले किसी माननीय प्राचीन आचार्य की कृति में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं मिला। प्राचीन शिलालेख भी इस विषय में मौन हैं—उनसे कुछ पता नहीं चलता। ऐसी हालत में पाठक समझ सकते हैं कि उक्त कथन कहाँ तक विश्वास किये जाने योग्य हो सकता है। अस्तु; जहाँ तक मैंने इस ग्रन्थ को देखा और इसके साहित्य की जाँच की है उससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ वास्तव में राजवार्तिक के कर्ता भट्टाकलंक देव का बनाया हुआ नहीं है, उनसे बहुत पीछे का बना हुआ है। भट्टाकलंक देव के साहित्य और उनकी कथन शैली से इस ग्रन्थ के साहित्य और कथन शैली का कोई मेल नहीं है। इसका अधिकांश साहित्य-शरीर ऐसे ग्रन्थों के आधार पर बना हुआ है जिनका निर्माण भट्टाकलंक देव के अवतार से बहुत पीछे के समयों में हुआ है। यहाँ पाठकों के संतोषार्थ कुछ प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं, जिनसे पाठकों को इस बात का भी अनुभव हो जायेगा कि यह ग्रन्थ कब बना है और किसने

बनाया है—

(१) इस प्रतिष्ठा पाठ के पाँचवें परिच्छेद में बहुत से पद्य ऐसे पाए जाते हैं जो भगवज्जिनसेन प्रणीत 'आदिपुराण' से ज्यों के त्यों या कुछ परिवर्तन के साथ उठाकर रखे गये हैं। नमूने के तौर पर कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्माणं च यत्।

शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम्॥२३॥

यह पद्य आदिपुराण के ३८वें पर्व का २८वाँ पद्य है और यहाँ ज्यों का त्यों बिना किसी परिवर्तन के रखा गया है।

ताः सर्वा अप्यर्हदीज्यापूर्विका यत इत्यतः।

विधिज्ञास्तामुशन्तीज्यां वृत्तिं प्राथमकल्पकीम्॥२०॥

इस पद्य का उत्तरार्द्ध और आदिपुराण के उक्त पर्वसम्बन्धी ३४ वें पद्य का उत्तरार्द्ध दोनों एक हैं। परन्तु पूर्वार्द्ध दोनों पद्यों के भिन्न-भिन्न पाए जाते हैं। आदिपुराण के उक्त ३४ वें पद्य का पूर्वार्द्ध है 'एवं विधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम्'। ग्रन्थकर्ता ने इस पूर्वार्ध को अपने इसी परिच्छेद के ३०वें पद्य का पूर्वार्द्ध बनाया है। और इस तरह पर आदिपुराण के एक पद्य को दो टुकड़ों में विभाजित करके उन्हें अलग-अलग स्थानों पर रखा है।

बलिस्नपनमन्यच्च जैन विद्यापीठं व्रतमुद्यापनादिकम्।

उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम्॥२९॥

यह पद्य आदिपुराण के ३८वें पर्व में नं० ३३ पर इसी प्रकार से दर्ज है, सिर्फ 'मित्यन्यत् त्रिसंध्यासेवया समम्' की जगह यहाँ 'मन्यच्च व्रतमुद्यापनादिकम्' ऐसा परिवर्तन पाया जाता है। इस परिवर्तन से ग्रन्थकर्ता ने 'त्रिसंध्यासेवा' के स्थान में 'व्रत' और 'उद्यापनादिक' को खास तौर से पंच प्रकार के पूजन में शामिल किया है। अस्तु, इन उदाहरणों से प्रकट है कि यह ग्रन्थ (प्रतिष्ठापाठ) भगवज्जिनसेन के आदिपुराण से पहले का बना हुआ नहीं है। परन्तु भट्टाकलंक देव भगवज्जिनसेन से पहले हो चुके हैं। भगवज्जिनसेन ने, 'भट्टाकलंक श्रीपाल पात्रकेसरिणां गुणाः' इत्यादि पद्य के द्वारा आदिपुराण में, उनका स्मरण भी किया है। ऐसी हालत में यह ग्रन्थ कदापि भट्टाकलंक देव का बनाया हुआ नहीं हो सकता। और इसलिए कहना होगा कि यह प्रतिष्ठापाठ भगवज्जिनसेन के आदिपुराण से पीछे का अर्थात्, विक्रम की ९वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है।

(२) इस ग्रन्थ के तीसरे परिच्छेद में एक स्थान पर, प्राणायाम का स्वरूप बतलाते हुए, कुछ पद्य दिये हैं। उनमें से एक पद्य इस प्रकार है—

द्वादशान्तात्समाकृष्य यः समीरः प्रपूर्यते।

स पूरक इति ज्ञेयो वायुविज्ञानकोनिदैः॥६६॥

यह पद्य और इसके बाद के दो पद्य और जो 'निरुणद्धि' और 'निसार्यते' शब्दों से प्रारम्भ होते

हैं, ज्ञानार्णव के २९वें प्रकरण में क्रमशः नं० ४, ५ और ६ पर दर्ज हैं। इससे प्रकट है कि यह ग्रन्थ ज्ञानार्णव के बाद का बना हुआ है। ज्ञानार्णव ग्रन्थ के कर्ता श्रीशुभचन्द्र आचार्य का समय विक्रम की ११वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में, समंतभद्र, देवनन्दि और जिनसेन का स्मरण करते हुए, “श्रीमद्भट्टाकलंकस्य पातु पुण्या सरस्वती” इस पद्य के द्वारा भट्टाकलंक देव का भी बड़े गौरव के साथ स्मरण किया है। इसलिए यह प्रतिष्ठापाठ, जिसमें शुभचन्द्र के वचनों का उल्लेख पाया जाता है, भट्टाकलंक देव का बनाया हुआ न होकर विक्रम की ११वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है, यह कहने में कोई संकोच नहीं होता।

(३) एकसंधि भट्टारक का बनाया हुआ, ‘जिनसंहिता’ नाम का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से सैकड़ों पद्य ज्यों के त्यों या कुछ परिवर्तन के साथ उठाकर इस प्रतिष्ठापाठ में रखे गये हैं। कई स्थानों पर उक्त संहिता का नामोल्लेख भी किया है और उसके अनुसार किसी खास विषय के कथन की प्रतिज्ञा या सूचना की गई है। यथा—

द्वितीये मंडले लोकपालानामाष्टकं भवेत्।

इति पक्षान्तरं जैनसंहितायां निरूपितम्॥७-१६॥

यदि व्यासात्पृथक्तेषां बलिदानं विवक्षितम्।

निरूप्यते तच्च जैनसंहितामार्गतो यथा॥१०-६॥

पहले पद्य में जैन संहिता के अनुसार कथन की सूचना और दूसरे में प्रतिज्ञा की गई है। दूसरे पद्य में जिस ‘बलिदान’ के कथन की प्रतिज्ञा है उसका वर्णन करते हुए जो पद्य दिये हैं उनमें से बहुत से पद्य ऐसे हैं जो उक्त संहिता से ज्यों के त्यों उठाकर रखे गये हैं। जैसा कि नं० ४७ के उत्तरार्द्ध से लेकर नं० ६१ के पूर्वार्द्ध तक के १४ पद्य बिल्कुल वही हैं जो उक्त संहिता के १४ वें परिच्छेद में नं० ३ से १६ तक दर्ज हैं। इन पद्यों में से एक पद्य नमूने के तौर पर इस प्रकार है—

पाशिनी धान्यदुग्धान्नं वायोः संपिष्टशर्वरी।

यक्षस्य पायसं भक्तं साज्यं क्षीरान्नमीशिनः॥५॥

यहाँ पाठकों को यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस प्रतिष्ठा पाठ का मंगलाचरण भी उक्त संहिता पर से लिया गया है। वह मंगलाचरण इस प्रकार है—

विज्ञानं विमलं यस्य विशदं विश्वगोचरं।

नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांग्रये॥१॥

वंदित्वा च गणाधीशं श्रुतस्कंधमुपास्य च।

ऐदंयुगीनामाचार्यान्पि भक्त्या नमाम्यहम्॥२॥

मंगलाचरण के दोनों पद्य उक्त संहिता के शुरू में क्रमशः नं० २ और ३ पर दर्ज हैं। सिर्फ दूसरे पद्य के उत्तरार्द्ध में भेद है। संहितामें वह उत्तरार्द्ध इस प्रकार से दिया है—

संग्रहिष्यामि मंदानां बोधाय जिनसंहिताम् ।

पाठक समझ सकते हैं कि जिस ग्रन्थ में मंगलाचरण भी ग्रन्थकर्ता का अपना बनाया हुआ न हो, वह ग्रन्थ क्या भट्टाकलंक देव जैसे महाकवियों का बनाया हुआ हो सकता है? कभी नहीं। वास्तव में यह ग्रन्थ एक संग्रह^१ ग्रन्थ है। इसमें न सिर्फ अर्थों का बल्कि शब्दों का भी संग्रह किया गया है। ग्रन्थकर्ता की उक्तियाँ इसमें बहुत कम हैं। जैसा कि इसके एक निम्नलिखित पद्य से भी प्रकट है—

श्लोकाः पुरातनाः किञ्चिल्लिख्यन्ते लक्ष्यबोधकाः ।

प्रायस्तदनुसारेण मदुक्ताश्च क्वचित् क्वचित्॥१०॥

भट्टारक एकसंधि का समय विक्रम की १३वीं शताब्दी पाया जाता है। इसलिए यह प्रतिष्ठापाठ, जिसमें उक्त भट्टारकजी की संहिता की बहुत कुछ नकल की गई है, विक्रम की १३वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(४) इस प्रतिष्ठा पाठ को १३वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ कहने में एक प्रबल प्रमाण और भी है। और वह यह कि इसमें पं० आशाधरजी के बनाए हुए ‘जिनयज्ञकल्प’ नामक प्रतिष्ठा पाठ और ‘सागारधर्मावृत’ के बहुत से पद्य, ज्यों के त्यों या कुछ परिवर्तन के साथ, पाये जाते हैं, जिनका एक एक नमूना इस प्रकार है—

किमिच्छकेन दानेन जगदाशा प्रपूर्य यः ।

चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हद्यज्ञः कल्पद्रुमो मतः॥५-२७॥

देशकालानुसारेण व्यासतो वा समासतः ।

कुर्वन्कृत्स्नां क्रियां शक्रो दातुश्चित्तं न दूषयेत्॥५-७३॥

पहला पद्य ‘सागारधर्मावृत’ के दूसरे अध्याय का २८वाँ और दूसरा पद्य ‘जिनयज्ञकल्प’ के पहले अध्याय का १४०वाँ पद्य है। जिनयज्ञकल्प को, पंडित आशाधर जी ने, विक्रम संवत् १२८५ में और सागारधर्मावृत को उसकी टीका सहित विक्रम संवत् १२९६ में बनाकर समाप्त किया है। इससे स्पष्ट है कि यह अकलंक प्रतिष्ठा पाठ विक्रम की १३वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है।

(५) इस ग्रन्थ के तीसरे परिच्छेद में, एक स्थान पर यह दिखलाते हुए कि जिन मंदिर में विलासिनी के नाच के लिए एक सुन्दर नाचघर (नृत्यमंडप) भी होना चाहिए, एक पद्य इस प्रकार से दिया है—

नृत्याद्विलासिनीरम्यनृत्यमंडपमंडितम् ।

पुरः पार्श्वद्वये यक्षयक्षीभवनसंयुतम्॥११७॥

यह ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार के चौथे पर्व का १९७वाँ पद्य है। उक्त त्रिवर्णाचार के और भी बहुत से पद्य इस ग्रन्थ में पाये जाते हैं। इसी तीसरे परिच्छेद में लगभग २५ पद्य और हैं, जो उक्त त्रिवर्णाचार से उठाकर रखे गये हैं। इससे प्रकट है कि यह ग्रन्थ (प्रतिष्ठापाठ) ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार के बाद का १. ग्रन्थ की प्रतिज्ञा और संधियों में भी इसे ऐसा प्रकट किया है।

बना हुआ है। ब्रह्मसूरि का समय विक्रम की प्रायः १५वीं शताब्दी पाया जाता है। इसलिए यह प्रतिष्ठापाठ विक्रम की १५वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है।

(६) इस ग्रन्थ के शुरू में मंगलाचरण के बाद ग्रन्थ रचने की जो प्रतिज्ञा की गई है उसमें 'नेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ' का भी एक उल्लेख है। यथा—

अथ श्रीनेमिचन्द्रीयप्रतिष्ठाशास्त्रमार्गतः ।

प्रतिष्ठायास्तदाद्युत्तरांगानां स्वयमंगिनाम्॥३॥

नेमिचन्द्र-प्रतिष्ठापाठ 'गोम्मटसार' के कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का बनाया हुआ न होकर उन गृहस्थ नेमिचन्द्र सूरि का बनाया हुआ है जो देवेन्द्र के पुत्र तथा ब्रह्मसूरि के भानजे थे और जिनके वंशादिक का विशेष परिचय पाने के लिए पाठकों को उक्त प्रतिष्ठापाठ पर लिखे हुए उस नोट को देखना चाहिए जो जैन हितैषी के १२वें भाग के अंक नं० ४-५ में प्रकाशित हुआ है। उक्त नोट में नेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ के बनने का समय विक्रम की १६वीं शताब्दी के लगभग बतलाया है। ऐसी हालत में विवादस्थ प्रतिष्ठापाठ विक्रम की १६वीं शताब्दी का या उससे भी कुछ पीछे का बना हुआ मालूम होता है। परन्तु इसमें तो कोई संदेह नहीं कि वह १६वीं शताब्दी से पहले का बना हुआ नहीं है। अर्थात् विक्रम की १५वीं शताब्दी के बाद का बना हुआ है। परन्तु कितने बाद का बना हुआ है, इतना निश्चय करना अभी और बाकी है।

(७) 'सोमसेन त्रिवर्णाचार' के पहले अध्याय में एक प्रतिज्ञा वाक्य इस प्रकार से दिया है—

यत्प्रोक्तं जिनसेनयोग्यगणिभिः सामन्तभद्रैस्तथा

सिद्धान्ते गुणभद्रनाममुनिभिर्भट्टाकलंकैः परैः

श्रीसूरिद्विजनामधेयविबुधैराशाधरैर्वाग्वरैः -

स्तद्दृष्ट्वा रचयामि धर्मरसिकं शास्त्रं त्रिवर्णात्मकम्॥

इस वाक्य में जिन आचार्यों के अनुसार कथन करने की प्रतिज्ञा की गई है उनमें 'भट्टाकलंक' का भी एक नाम है। इन भट्टाकलंक से 'अकलंक प्रतिष्ठा पाठ' के कर्ता का ही अभिप्राय जान पड़ता है, 'राजवार्तिक' के कर्ता का नहीं। क्योंकि सोमसेनत्रिवर्णाचार में जिस प्रकार 'जिनसेन' आदि दूसरे आचार्यों के वाक्यों का उल्लेख पाया जाता है उस प्रकार राजवार्तिक के कर्ता भट्टाकलंक देव के बनाये हुए किसी भी ग्रन्थ का प्रायः कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रत्युत, अकलंक-प्रतिष्ठापाठ के बहुत से पद्यों और कथनों का समावेश उसमें जरूर पाया जाता है। ऐसी हालत में, सोमसेन त्रिवर्णाचार में 'अकलंक प्रतिष्ठापाठ' का उल्लेख किया गया है, यह कहना समुचित प्रतीत होता है। सोमसेन त्रिवर्णाचार विक्रम संवत् १६६५ में बनकर समाप्त हुआ है और अकलंक प्रतिष्ठापाठ का उसमें उल्लेख है। इसलिए अकलंक प्रतिष्ठापाठ विक्रम संवत् १६६५ से पहले बन चुका था, इस कहने में भी कोई संकोच नहीं होता।

नतीजा इस सम्पूर्ण कथन का यह है कि विवादस्थ प्रतिष्ठापाठ राजवार्तिक के कर्ता भट्टाकलंक

देव का बनाया हुआ नहीं है और न विक्रम की १६वीं शताब्दी से पहले का ही बना हुआ है। बल्कि उसकी रचना विक्रम की १६वीं शताब्दी या १७वीं शताब्दी के प्रायः पूर्वार्द्ध में हुई है। अथवा यों कहिए कि वह विक्रम संवत् १५०१ और १६६५ के मध्यवर्ती किसी समय का बना हुआ है।

अब रही यह बात कि, जब यह ग्रन्थ राजवार्तिक के कर्ता भट्टकलंक देव का बनाया हुआ नहीं है और न भट्टकलंकदेव नाम का कोई दूसरा विद्वान् जैन समाज में प्रसिद्ध है, तब इसे किसने बनाया है? इसका उत्तर इस समय सिर्फ इतना ही हो सकता है कि, या तो यह ग्रन्थ 'अकलंक' या 'अकलंकदेव' नाम के किसी ऐसे अप्रसिद्ध भट्टारक या दूसरे विद्वान् महाशय का बनाया हुआ है जो उपर्युक्त समय के भीतर हुए हैं और जिन्होंने अपने नाम के साथ स्वयं ही 'भट्ट' की महत्वसूचक उपाधि को लगाना पसंद किया है^२। अथवा इसका निर्माण किसी ऐसे व्यक्ति ने किया है जो इस ग्रन्थ के द्वारा अपने किसी क्रियाकाण्ड या मंतव्य के समर्थनादिरूप कोई इष्ट प्रयोजन सिद्ध करना चाहता हो और इसलिए उसने स्वयं ही इस ग्रन्थ को बनाकर उसे भट्टकलंक देव के नाम से प्रसिद्ध किया हो और इस तरह पर यह ग्रन्थ भी एक जाली ग्रन्थ बना हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि, यह ग्रन्थ कोई महत्त्व का ग्रन्थ नहीं है। इसमें बहुत से कथन ऐसे भी पाए जाते हैं जो जैनधर्म के विरुद्ध हैं, अथवा जैन सिद्धान्तों से जिनका कोई मेल नहीं है। चूँकि यह लेख सिर्फ ग्रन्थ की ऐतिहासिकता ग्रन्थकर्ता और ग्रन्थ के बनने का समय निर्णय करने के लिए ही लिखा गया है इसलिए यहाँ पर विरुद्ध कथनों के उल्लेख को छोड़ा जाता है। इस प्रकार के विरुद्ध कथन और भी प्रतिष्ठापाठों में पाए जाते हैं, जिन सबकी विस्तृत आलोचना होने की जरूरत है। अवसर मिलने पर प्रतिष्ठापाठों के विषय पर एक स्वतंत्र लेख लिखा जायेगा और उसमें यह भी दिखलाया जायेगा कि उनका वह कथन कहां तक जैनधर्म के अनुकूल या प्रतिकूल है।

देवबन्द

ता. २६ मार्च, सन् १९१७

२. बाद को 'हिस्ट्री ऑफ कनडीज लिटरेचर' (कनडी साहित्य का इतिहास) से मालूम हुआ कि इस समय के भीतर 'भट्टकलंक देव' नाम एक दूसरे विद्वान् हुए हैं जो दक्षिणकनाडा में हाडुवल्लिमठ के अधिपति भट्टारक के शिष्य थे और जिन्होंने विक्रम की १७ वीं शताब्दी में (ई० सं० १६०४ में) कनडी भाषा का एक बड़ा व्याकरण संस्कृत में लिखा है, जिसका नाम है 'कर्णाटकशब्दानुशासनम्' और जिस पर संस्कृत की एक विस्तृत टीका भी आपकी ही लिखी हुई है। हो सकता है कि यह प्रतिष्ठा पाठ आपकी ही रचना हो। परन्तु फिर भी इसमें मंगलाचरण का दूसरे ग्रन्थ से उठाकर रखा जाना कुछ खटकता जरूर है, क्योंकि आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् कहे जाते हैं। यदि आपका उक्त शब्दानुशासन मुझे देखने के लिये मिल सकता तो इस विषय का कितना ही संदेह दूर हो सकता था।